वैदिक व्याख्यान माला - दसवाँ व्याख्यान

वैदिक राष्ट्र-शासन

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, साहित्य वाचस्पति, गीतालङ्कार

मूल्य छः आने

ॐ

वैदिक राष्ट्र-शासन

"वैदिक राष्ट्रगीत" हमने देखा। उसमें बहुमूल्य उपदेश है, राष्ट्रका धारण करनेवाले सद्गुणोंका संग्रह उसमें है, संघटना करनेका आदेश है, अपने नगरोंका आदर है, अपने पूर्वजोंका आदर करनेका आदेश है, मातृभूमिके उन्नत्यर्थ आत्मसमर्पण करनेका उपदेश है, मातृभूमिकी सेवाका व्रत लेनेका संदेश है, मातृभूमिका अध्यक्ष मैं बनूंगा यह महत्त्वाकांक्षा धारण करनेका उपदेश है। इस तरह इस राष्ट्रगीतमें सब आवश्यक उपदेश हैं। इतना सुयोग्य राष्ट्रगीत किसी भी अन्य देशका नहीं है। यह वेदने दिया है।

राष्ट्रगीत है और वह उत्तमसे उत्तम है, इतना सिद्ध होनेसे राष्ट्रीय उन्नतिकी अन्य बातें भी वेदमें होनी चाहिये ऐसा अनुमान सहज ही से किया जा सकता है। यदि राष्ट्रकी कल्पना वेदमें न होती, तो 'राष्ट्र गीत' भी न होता। जिस कारण वेदमें 'राष्ट्रगीत' है और वह जगत्के सब राष्ट्रगीतोंमें श्रेष्ठ है, उस कारण वेदमें राष्ट्रशासनके विषयमें भी निर्देश होने चाहिये और वैसे हैं भी। इस लिये इन राष्ट्रीय निर्देशोंका अब हम विचार करते हैं। इसका विचार करनेके समय एक वेदमन्त्र हमारे सामने सबसे प्रथम आजाता है, वह यह है—

ऋषिऋण

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥
अथर्व० १९।४१।१

"आत्मज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ ऋषियोंने सब लोगोंका कल्याण करनेकी इच्छासे प्रारंभमें तप करनेकी दीक्षा ली और अनुष्ठान किया। इससे राष्ट्र उत्पन्न हुआ, बल और पराक्रम करनेका सामर्थ्य निर्माण हुआ। इस कारण इस राष्ट्रके सामने ज्ञानियोंको विनम्रभावसे उपस्थित रहना चाहिये।

इस मन्त्रमें कहा है कि सृष्टि उत्पत्तिके प्रारंभमें जिस समय लोग प्रगति करने लगे, उस समय ऋषियोंने सब जनताके अभ्युदय निश्रेयसकी सिद्धिके लिये जो यत्न दक्षतासे किये, उससे राष्ट्र निर्माण हुआ। राष्ट्र बननेपर सांघिक बल बना और संघशक्तिसे पराक्रम करनेका सामर्थ्य बढ गया। इसलिये सब ज्ञानी लोग इस राष्ट्रीय सामर्थ्यका आदर करें।

ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्रशक्ति निर्माण हुई यह बात यहां इस मन्त्रमें पाठक देखें। राष्ट्रीयता यह ऋषिऋण है। यह मन्त्र ब्रह्मा ऋषिका देखा है। यह मन्त्र कहता है कि ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्र बना। राष्ट्रकी संघटना हुई और बडा सामर्थ्य निर्माण हुआ। यह कैसा हुआ वह हम आगे देखेंगे। यहां प्रथम हम देखना चाहते हैं कि इस राष्ट्रके शासनके कितने भेद हैं और प्रत्येकके लक्षण क्या हैं। राज्य शासनोंके कई प्रकार वेदोंमें आये हैं, उनका क्रमशः विचार यहां हम करते हैं। इनमें पहिला 'विराट् शासन' है—

विराज् शासन

१ विराट् – 'वि+राट्' अथवा 'वि+राज्' यह नाम उस अवस्थाका है कि जिस समय 'राजा नहीं था'। राजा की कल्पना भी उत्पन्न नहीं हुई थी। इस समयके शासनका नाम 'वैराज्य' शासन है। वेदमें—

विराड् वा इदमग्र आसीत्
तस्या जातायाः सर्वमविभेद्
इयमेवेदं भविष्यतीति। अथर्व ८।१०।१

वैराज्य व्यवस्था

'राजविहीन अवस्था प्रथम थी। यह देखकर सबको भय हुआ कि यही भविष्यमें भी रहेगी।' राजा नहीं था। राजाकी नियुक्ति करनेकी अवस्था समाजमें नहीं आयी थी, उस प्राथमिक अवस्थाका यह नाम है। यह राजविरहित अवस्था है। राजा अस्तित्वमें आनेके पूर्वकी यह अवस्था है। इसको 'वैराज्य' कहते हैं। वैराज्य शासन भी एक प्रकारका शासन है। यह 'अराजक' नहीं है। इस वैराज्यमें राजा नहीं होता, अतः सब लोग मिलकर अपना शासन प्रबंध करते हैं।

भारतमें यह वैराज्य टूटी फूटी अवस्थामें आज भी वन्य जातियोंमें दिखाई देता है। इस व्यवस्थाको आज 'देव' कहते हैं। जब कोई निर्णय करना होता है, तब सब जातीको बुलायी जाता है और सब जाती निर्णय देती है वह सब मानते हैं और वैसा ही सब करते हैं।

सत्ययुगके वर्णनें कई स्थानोंपर ऐसा वर्णन आता है कि उस समय राजा नहीं था, सेना नहीं थी, परंतु लोग धर्मानुसार रहते थे और धर्मसे सबका पालन होता था। यह अवस्था वैराज् शासनकी अवस्था है। यह अवस्था प्रारंभिक अवस्था है। अत्यंत सुधार होनेपर भी वैराज अवस्था आसकती है। वेदमें दोनों प्रकारके वैराज्योंका वर्णन है। प्रारंभिक अवस्थाका वैराज्य ऊपर दिये मंत्रमें है। जब सब धर्मात्मा होंगे, तबका वर्णन भी है जो ब्राह्मणों और पुराणोंमें कृतयुग वा सत्ययुगके वर्णनमें हमें दीखता है। प्रारंभमें संघटित शासन करनेकी कल्पना उत्पन्न नहीं हुई थी और परमोच्च सुधार होनेपर लोग स्वयं शासित होनेके कारण उनको उस समय किसी शासककी आवश्यकता नहीं थी। अस्तु यह है वैराज्य शासनका स्वरूप। इसको 'विराट् वा विराज्' कहते हैं। यहां जातीकी जाती सबकी सब मिलकर अपनी शासन व्यवस्था करती है।

वेदने इस "प्रारंभिक राजविहीन शासन" को प्रशंसा योग्य माना नहीं है। इसलिये पूर्वोक्त मंत्रमें कहा है।

तस्या जातायाः सर्वमाविवेत्।
इयमेवेदं भविष्यतीति।" अथर्व ८।१०।१

"यही परिस्थिति सदा रहेगी, यह भय उस समयके धुरीण लोगोंके मनमें उत्पन्न हुआ।" जो भयजनक अवस्था होती है वह सन्माननीय नहीं हो सकती। अतः यह प्रारंभिक "वैराज शासन" ठीक नहीं है।

वैराज शासनमें एक अध्यक्ष नहीं होता। सब जनता मिले और शासनप्रबंध करे। यह एक ग्रामके विषयमें भी बनना कठिन होता है। यदि जाती नाना ग्रामोंमें बिखरी रही तब तो उन सबको बुलाना, उनका इकट्ठा होना और निर्णय देना कितना कठिन होगा, इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। यह कठिनता लोगोंके सामने आगयी और ग्रामका शासन ग्रामसभाद्वारा हो, यह पद्धति शुरू हुई। इस विषयमें कहा है...

ग्रामसभा

सा उदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत्। अथर्व ८।१०।२ ग्रामसभा—"वह जनशक्ति उत्क्रान्त हुई और वह ग्रामसभामें परिणत हुई।" प्रथम 'वि-राज्' अवस्था थी, राजा नहीं था, परंतु सर्वत्र लोक ही लोक थे। जनता ही जनता थी। सब जनताको इकट्ठा करना कठिन कार्य है, इसलिये ग्रामसभा सब लोगोंने पसंद की और ग्रामसभा बनी। ग्रामसभा द्वारा ग्रामका राज्यशासन चलने लगा। यहां ग्रामसभा और ग्रामसभाका अध्यक्ष बने और ग्रामका शासन ग्रामसभा और उसका अध्यक्ष करने लगे।

ग्रामकी सब जनता मिलकर ग्रामका शासन करे, इसकी अपेक्षा ग्रामसभा शासन करेगी तो अच्छा रहेगा। ग्रामसभा छोटी होती है, सदस्य थोडे होते हैं। उनको बुलाना, उनका इकट्ठा होना, और एकमतसे कार्य करना सहजहीसे हो सकता है। वि-राज् शासनसे ग्रामसभाका शासन अधिक उत्तम होना स्वाभाविक है। ग्रामके लोग भी ग्रामसभाकी ओर नेतृत्वभावसे देख सकते हैं और ग्रामसभाके सदस्य भी दायित्वके साथ अपना कार्य कर सकते हैं।

ग्रामसभाका कार्यक्षेत्र ग्रामतक ही मर्यादित रहता है। ग्राम एक छोटासा क्षेत्र है। ग्राम, नगर, पत्तन, पुरी, क्षेत्र इनका विस्तार छोटा या बडा हो सकता है, तथापि वह मर्यादित ही होगा। अनेक ग्रामोंका कैसा शासन होगा यह विचार इस समय मनमें आता है। इस समय अनेक

ग्रामोंकी मिल कर समिति बनानेकी कल्पना विचारकोंके सामने आजाती है। इस विषयमें कहा है—

राष्ट्र समिति

सा उदक्रामत् सा समितिं न्यक्रामत्। अथर्व०८।१०

३ समिति— "वह जनताकी शक्ति उत्क्रान्त हुई और वह शक्ति समितिमें परिणत हुई।" समितिका अर्थ प्रान्त या राष्ट्र समिति है। अनेक ग्रामसभाओंके निरीक्षणका कार्य करनेवाली शिरोमणी सभा समिति कहलाती है। इस तरह यह राष्ट्रशासन अथवा अनेक ग्रामोंका मिलकर शासन करनेवाली समिति नियत हुई। अनेक ग्रामोंकी इससे संघटना हुई और संघका बल इससे उत्पन्न हुआ। एक एक ग्राम जो बिखरा था, वह समितिके शासनके अन्दर आनेसे एक ही शासनसे सब ग्राम बद्ध हुए। ग्रामसभाओंके प्रतिनिधि आकर उनकी यह राष्ट्रशासक समिति बन गई। यहांतक सभा और समिति बनी। तो भी राजाकी कल्पना अब भी उत्पन्न नहीं हुई। इनके बीचमें इसके बाद एक मन्त्री मण्डल बना है देखिये—

मंत्री मण्डल

सा उदक्रामत् सा आमन्त्रणे न्यक्रामत्। अथर्व ८।१०

४ मन्त्रीमण्डल— "वह जनताकी शक्ति और अधिक उत्क्रान्त हुई, और वह आमन्त्रण अर्थात् मन्त्रीमण्डलमें परिणत हुई।" यहांतक राष्ट्रीय जीवनकी उन्नति हुई। पहिली विराज् अर्थात् राजविरहित केवल जनशक्ति ही थी। उससे ग्रामसभा बनी, पश्चात् राष्ट्रसमिति बनी और पश्चात् मन्त्रीमण्डल बना। मन्त्रणा करनेवाला मण्डल बना और इसका एक अध्यक्ष हुआ। यहां तक लोक प्रतिनिधि ही हैं। ग्रामसभा बनी, वह ग्रामवासियोंके द्वारा चुनी हुई ग्रामके पंचोंकी सभा है। पश्चात् राष्ट्रसमिति बनी, यह अनेक ग्रामसभाओंके प्रतिनिधियोंकी सभा है। अनेक ग्रामसभाओं द्वारा अथवा अनेक ग्रामोंकी जनता द्वारा चुने हुए सदस्योंकी सभा ही राष्ट्रसमिति कहलाती है। राष्ट्र समिति थोडेसे अपने प्रतिनिधि चुनती है वही आमंत्रण सभा अथवा मंत्री मण्डल कहा जाता है। इसका अध्यक्ष राष्ट्राध्यक्ष होता है। ये सब ही लोकोंके पसंद किये लोकप्रतिनिधि ही हैं। अध्यक्ष भी जनताका प्रतिनिधि है। अभीतक अनियंत्रित राजसत्ताका नाम भी नहीं है।

अधिकारका केन्द्रीकरण

यह जो (उदक्रामत्) उत्क्रमण हुआ वह यद्यपि जनताके प्रतिनिधियोंका ही हुआ है, तो भी उसमें जनताने अपने चुने हुए प्रतिनिधि ही हैं। तथापि इसमें अधिकारका केन्द्रीकरण हुआ है यह बात देखने योग्य है। जो अधिकार ग्रामकी जनताका था वह ग्रामसभाके थोडेसे लोगोंके हाथोंमें आगया। पश्चात् अनेक ग्रामोंकी जनताके हाथोंमें जो अधिकार था वह समितिके थोडेसे सदस्योंके हाथोंमें एकत्रित हुआ और इसके पश्चात् वही सब अधिकार मंत्री मण्डलके दस पांच सदस्योंके हाथोंमें आगया और पश्चात् यह सब अधिकार अध्यक्षके हाथोंमें केन्द्रित हुआ। जो अधिकार अथवा जो शक्ति जनतामें बिखरी थी, वही इस तरह प्रथम थोडे व्यक्तियोंके हाथोंमें आगयी और पश्चात् प्रधानमंत्री और अध्यक्षके हाथमें आगयी।

इस तरह यह उन्नति तो हो गई, राष्ट्रकी संघटना हो गयी, पर विकेन्द्रित अधिकारका केन्द्रीकरण हुआ और जो अधिकार अनेकोंके पास था वही एकके हाथमें आ गया। यहां राज्यपदका उदय हुआ है। पहिले जो राज्याध्यक्ष था, जब उसके हाथमें अधिकार केन्द्रित हुआ, तब वही अध्यक्ष अपने अधिकारको अधिक केन्द्रित करने लगा, और अपने अधिकारोंको अधिक बढाने लगा, प्रथम वह जनसेवा करता रहा और जनताका विश्वास संपादन करता रहा और जनता उसको अधिकार देती गयी और अन्तमें जो लोकमतानुवर्ती अध्यक्ष था, वही अनियन्त्रित राजा बन गया। केन्द्रीकरणका यही दुष्परिणाम है। इसमें राष्ट्रशक्ति बढती है, पर वह अनियंत्रित और केन्द्रित होती जाती है।

अनियंत्रित राजा

५ अध्यक्षका राजा - जो अध्यक्ष था वह जनसेवा करता गया, और वही बारंबार अध्यक्ष बनता गया और अन्तमें जनताने पुनः पुनः निर्वाचन करनेके कष्ट करना छोड दिया और उसी अध्यक्षको स्थायी राज्यपद दिया। इस समय वह राजा (रञ्जयति जनौ) जो प्रजाओंका रञ्जन करता है, प्रजाहित करता है, प्रजाकी उन्नति ही अपना ध्येय मानता है। ऐसा यह वंशपरंपरासे मान्य किया जाता है। अध्यक्ष जो लोकरंजन करनेवाला वही आगे राजा बना

और उसीका अनियंत्रित राजा बना है। शक्तिके केन्द्रीभवनका यह परिणाम ही है। जो अध्यक्ष प्रजासेवक था, वही प्रजाका स्थायी ईश्वर बना और प्रजा उसकी सेवा करनेवाली बनी। ऐसा ही होता है। लोकप्रिय अध्यक्ष ही अधिकार प्राप्तिके कारण स्थायी शासक बन जाता है। यही तो अधिकार प्राप्तिसे गिरावट होती है।

रक्षकोंके राक्षस

रक्षकोंके ही राक्षस बनते हैं। प्रजा उत्पन्न होते ही प्रजापतिने उनसे पूछा कि तुम क्या कार्य करोगे? जिन्होंने कहा कि 'हम यज्ञ करेंगे' (यजामः) वे याजक बने और जिन्होंने कहा कि 'हम रक्षण करेंगे (रक्षामः)' वे रक्षक बने। इनका दूसरा नाम 'पूर्वदेवाः' था। ये जनताका रक्षण करनेके कारण देववत् पूज्य थे। पहिले समयके ये देव ही थे। रक्षण करते करते ये गिरते गये और अन्तमें ये ही राक्षस बने!! रक्षण करना पवित्र काम है, यह जनसेवा है। इससे मनुष्यका उद्धार होता है। पर रक्षक होनेका अधिकार हाथमें आनेसे वे रातमें पहारा करनेवाले ही चोरी करने लगते हैं और वे ही रक्षक अन्तमें राक्षस बनते हैं। यह यक्ष और राक्षस बननेका वृत्तांत अनेक पुराणोंमें है और यह बताता है कि रक्षक सावध न रहे तो उनके गिरनेका भय है।

जो पहिले देव थे वे भी भयानक राक्षस बने इसका अर्थ ही यह है कि अधिकारका मद अधिकारियोंको गिराता है। इसलिये जिनके हाथमें अधिकार होता है, उनको अत्यंत सावध रहना चाहिये। इसी तरह जो राष्ट्रसमिति अथवा मन्त्रीमण्डलका अध्यक्ष होता है, जिसके हाथमें राष्ट्रशासनकी बागडोर आती है, उसको बडा सावध रहना चाहिये। अस्तु जनपदका जनताने चुना हुआ अध्यक्ष ही अपने हाथमें अधिकारोंको केन्द्रित करके गिरता गया और अन्तमें अनियन्त्रित सर्वाधिकारी बना!!!

इस कारण 'राजा' की व्युत्पत्ति प्रारंभमें लोकरंजन करनेवाला (राजा प्रकृतिरंजनात्) ऐसी मिलती है। इस समय प्रकृति अर्थात् प्रजा उपास्य है, प्रजाको सन्तुष्ट रखना राजाका कार्य है, यह भाव इस समय है। परन्तु यह भाव लुप्त होकर पश्चात् राजाको ही प्रभुका पद दिया जाता है। इस समय 'राज्ञः इदं राज्यं' ऐसी राज्यकी व्युत्पत्ति बनी। इस समय राज्य यह राजाकी संपत्ति बनी। राष्ट्र राजाका उपास्य था, वही उसकी उपभोग्य संपत्ति बनी। इसीका नाम 'रक्षक' का 'राक्षस' बनना है। अधिकार हाथमें आनेपर जो सावध नहीं रहेगा, वह अवश्य गिरेगा। इसीलिये वेदने राजाके राज्याभिषेकके समय सावधानीकी सूचना दी है—

राज्याभिषेकके समय उपदेश

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥१॥
इहैवैधि मापच्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।
इन्द्र इवेह ध्रुवास्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥ २ ॥
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ ४ ॥

ऋ. १०।१७३

यहां जनताका नेता पुरोहित अभिषिक्त राजासे कहता है कि 'हे राजन्! मैंने तुमको इस स्थानपर लाकर रखा है। तुम यहां स्थिर रहो, चञ्चल न बनो। सब प्रजाजन तुम्हें इस स्थानपर रखनेकी इच्छा करें। तुमसे राष्ट्र भ्रष्ट न हो जावे, तुमसे राष्ट्र दूर न हो जावे। यहीं रहो, चञ्चल न बनो, पर्वतके समान स्थिर रहो। इन्द्रके समान यहां स्थिर रहो और राष्ट्रका उद्धार करो। जिस तरह द्यौ, पृथिवी, पर्वत और यह सब जगत् स्थिर है, वैसा ही यह राजा स्थिर रहे।'

इस रीतिसे राज्याभिषेकके समय जनताका नेता राजासे कहता है। इन मन्त्रोंमें कई वाक्य मनन करने योग्य हैं। "विशः त्वा सर्वाः वाञ्छन्तु।" सब प्रजाजन तुझे राज्यपर रखनेकी इच्छा करें। प्रजाकी इच्छासे ही यह राजा राज्यपर स्थिर रह सकता है। प्रजा जब विरोध करने लगेगी तब कोई राजा अपने पाशवी बलसे ही राज्यपर नहीं रह सकता। इसलिये पुरोहित इस मन्त्र द्वारा राजाको सूचना देता है, कि तुम ऐसा राज्य करो कि, जिससे सब प्रजाजन तुझे ही इस राज्यपर रखनेकी इच्छा करें। प्रजाका संतोष ही राजाकी स्थिरताका आधार है।

"मा त्वत् राष्ट्रं अधिभ्रशत्।"

तुम्हारे हाथसे राष्ट्र न गिरे। यहां "अधिभ्रशत्" पदमें दो भाव हैं। एक भाव यह है कि राष्ट्रका अधःपतन अर्थात् नैतिक गिरावट तुम्हारे शासनके कारण न हो। और दूसरा भाव यह है कि राष्ट्रपरका तुम्हारा अधिकार दूर न हो। दोनों भाव यहां विचार करने योग्य हैं। राष्ट्रका नैतिक अधःपतन हुआ, तो भी राष्ट्रकी हानि है और प्रजाका क्षोभ होकर राजाको अधिकारसे भ्रष्ट होना पडे, तो भी राजाकी हानि है। ये दोनों हानियां राज्याभिषेकके समय राजाको पुरोहित सुना रहा है। अधिकार प्राप्त होनेसे मनुष्यका पतन होनेकी संभावना है, और जितना अधिकार बडा उतना पतन भी अधिक गहरा होता है। ये मन्त्र सुनकर राजा क्या उत्तर देता है देखिये—

जनताका प्रिय राजा

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥ ४ ॥
असपत्नः सपत्नहाऽभिराष्ट्रो विषासाहिः।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥ ५ ॥

ऋ. १०।१७४

"जिस उपायसे इन्द्र श्रेष्ठ तेजस्वी, उत्तम और कृतकृत्य हुआ उसी यज्ञसे मैं शत्रुरहित हुआ हूं। उससे मैं शत्रुरहित, दुष्टोंका विनाशक, शत्रुके आक्रमणोंका प्रतिकार करनेमें समर्थ, और राष्ट्रके हित करनेका ही विचार करने वाला हुआ हूं। मैं सब प्राणियोंका और सब जनताका प्रिय करता हूं।"

राष्ट्रहितकी प्रतिज्ञा

यह राजा कहता है। राष्ट्रहित करनेकी प्रतिज्ञा यहां राजा करता है। राजाने यज्ञ किया, इस यज्ञमें श्रेष्ठ पुरुषोंका सत्कार किया, राष्ट्रके सब लोगोंकी संघटना की और जो दीन थे उनकी दीनताको दूर करके उनको भी सामर्थ्यवान बनाया। राजाने यह यज्ञ किया जिससे वह शत्रुरहित हुआ, जो ऐसा यज्ञ करेगा वह भी शत्रुरहित हो जायगा।

६ राजा और राज्य— यहांतक हमने राजा और राज्य पदके दो अर्थ देखे। एक 'राजा' प्रजाका रंजन अथवा प्रिय करनेवाला और उसका शासन जहां चलता है वह 'राज्य' है। इस 'राजा' पदका दूसरा अर्थ यह है कि जो स्वयं चाहे वैसा अनियंत्रित शासन करे। (राज्ञः इदं राज्यं) ऐसे राजाकी अपनी भोग्य संपत्ति राज्य है। इस दूसरे अर्थकी निन्दा वेद करता है यह पाठक ऊपरके मंत्रोंमें स्पष्ट रीतिसे देख सकते हैं। वेदमें जनताका चुना हुआ, पसंद किया हुआ राजा है, और पिताका पुत्र आनुवंशिक अधिकारसे बैठनेवाला भी राजा है। पर यह आनुवंशिक पुत्र भी प्रजाकी संमतिसे ही राजगद्दीपर बैठता है। जैसा भगवान् रामचन्द्रजीका राजगद्दीपर बैठना तब हुआ कि जब प्रजाने संमति दी। वेन जैसा भी अनियंत्रित राजा होता था, पर उसको ऋषियोंने मारा, अर्थात् उच्छृंखल राजाका वध भी होता था, और दूसरा प्रजासंमत राजा गादीपर बिठलाया जाता था।

नये नियमोंका पालक राजा

पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन्
क्षमया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत्।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा
वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्।

ऋ. १०।६१।७

"जब प्रजापालक राजाने अपनी पुत्री जैसी पालने योग्य प्रजा परिषत्का अपमान किया, तब मातृभूमिके साथ (अर्थात् प्रजाजनोंके साथ) जो संघर्ष हुआ उसमें उस प्रजापतिका वीर्य नष्ट हुआ अर्थात् यह मारा गया। तब ज्ञानी लोगोंने, नया विधान बनाया और नियमोंका पालन करनेवाला प्रजापति राज्यपर बिठलाया।"

यहां स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि प्रजाके नेता एक दुष्ट राजाको हटाते हैं और नियमोंके पालन करनेवाले नये राजाको राजगद्दीपर बिठलाते हैं। यह प्रजाका अधिकार है। इस तरह यह वैदिक राज्य व्यवस्था स्पष्ट दीखती है। यह है राजा और यह है राज्यशासन। जहां मनुष्य होता है वहां भला और बुरा हुआ ही करता है। भलेका रक्षण और बुरेका विनाश करना चाहिये। यह देवासुर संग्राम सतत चलता ही रहेगा। अब आगेके राज्यशासन हम देखते हैं—

प्रजाके खानपानका प्रबंध

७ भोज्य— यह एक प्रकारका राज्यशासन है। इसमें प्रजाको भोजन देनेका भार राजापर रहता है। प्रजाको काम

देना, काम करनेपर योग्य दाम और योग्य दामोंसे योग्य भोजन प्रजाको मिलना चाहिये। राज्यप्रबंधका यही ध्येय होना चाहिये। भोजनमें अन्न, वस्त्र और रहनेका स्थान इनका समावेश होता है। इसका भार राजापर जहां रहता है वह भोज्यशासन है। यह ऐसा प्राचीन भारतके अनेक शासनोंमें हम देखते हैं। यह सचमुच अच्छा राज्यशासन है।

राजाको यह दायित्व लेना चाहिये। राजाका यह आवश्यक कर्तव्य भी है। भोज्यशासन प्रायः बुरा नहीं होता। पुराणोंमें हम देखते हैं कि गणेशजीने अपने भूतानके राज्यमें सब तरहकी उत्तम राज्यशासन पद्धति प्रयोगमें लायी थी। सब प्रजाकी गणना उसने की, कामधंदोंके अनुसार वर्ग किये, प्रत्येकको काम मिले, काम करनेवालेको आवश्यक सब वस्तु मिलें, रोगीको औषध मिले, दीनकी दीनता दूर हो ऐसी उत्तम व्यवस्था श्री गणेशजीने की थी। इसी कारण उनकी अग्रपूजा होने लगी। वह योग्य थी। दूसरा हम रामराज्य सुनते हैं जहां सब प्रजाजनोंका हित करना ही राजाका ध्येय माना गया था।

साम्राज्य शासन

८ साम्राज्यं— साम्राज्यमें अनेक छोटे मोटे पृथक् पृथक् राज्य रहते हैं, वे सब परस्पर पृथक् रहनेपर भी और अनेक प्रकारके विधानोंसे पृथक् पृथक् पद्धतिसे चलाये जानेपर भी उनका एक सम्राट् होता है। यह साम्राज्य है। प्राचीन समयमें बडे बडे साम्राज्य हुए जो इतिहासमें प्रसिद्ध हैं।

९ महाराज्यं— साम्राज्यमें जो अनेक छोटे मोटे राज्य होते हैं, वे सब स्वेच्छासे या दबावसे एक विधानमें आ गये और उनका एक राज्य हुआ तो वह महाराज्य होता है। महाराज्यमें जो रहेंगे वे एक होकर रहेंगे, साम्राज्यमें पृथक् पृथक् शासन रह सकते हैं। यह साम्राज्य और महाराज्यमें भेद है।

अधिकारियोंद्वारा राज्यशासन

१० आधिपत्यमयं राज्यं— अधिकारियोंको अधिपति कहते हैं। अधिपतियों अर्थात् अधिकारियोंके मण्डलके आधीन जहां की शासन व्यवस्था रहती है वह 'आधिपत्यमय' राज्य कहलाता है। राज्यके बडे अधिकारियोंका मण्डल बनाया जाता है और जैसा वे चाहते हैं वैसा उस राष्ट्रका शासन चलाया जाता है। इसमें प्रजाकी संमतिके लिये कोई स्थान नहीं रहता।

नियम तोडनेवाले प्रजापतिको हटाना या उसका वध करना और नये नियमपालक अच्छे शासकको प्रजापतिके स्थानपर बिठलाना यह इस आधिपत्यमय राज्यशासनमें नहीं हो सकता। अधिकारी वर्ग जैसा चाहेंगे वैसा ही यहांका शासन होगा। यह शासन प्रजाका सुख नहीं बढा सकता।

सामन्तमण्डलका राज्य

११ सामन्तपर्यायी राज्यं— छोटे राजाओंको सामन्त अथवा मांडलिक कहते हैं। सामन्तमण्डलीके आधीन जहां की राज्यव्यवस्था रहती है वह सामन्तपर्यायी राज्यव्यवस्था है। सम्राट्के साथ छोटे माण्डलिक राजाओंका मण्डल रहता है और ये अपनी संमतिसे जैसा चाहिये वैसा राज्यशासन चलाते हैं। इस व्यवस्थामें भी प्रजाकी संमतिका कोई मूल्य नहीं रहता, इसलिये इस शासनसे प्रजाका सुख नहीं बढ सकता। पहिले दुष्ट सम्राट्को हटाना और दूसरे नये अच्छेको उसके स्थानमें नियुक्त करना यह इस शासनमें नहीं हो सकता। सामन्तोंकी संमतिके ऊपर सम्राट्की ही संमति यहां शिरोधार्य होती है। यह शासन प्रायः एक सम्राटके विचारसे ही चलता है, पर सामन्तोंकी भी संमति अंशतः रहती है। सम्राट्के प्रतिकूल कोई सामन्त कुछ बोल सकेगा ऐसा नहीं माना जा सकता। इसलिये इसमें नाममात्र सामन्त रहते हैं, सर्वाधिकार सम्राट्का ही यहां रहता है। यहां भी इस कारण प्रजाके हितकी संभावना कम ही दीखती है।

लोक राज्य

१२ जानराज्य— सब जनोंका हित करनेके लिये जिसमें सब प्रजाकी अनुकूल संमति प्राप्त करनेके साधन रहते हैं, प्रजाके प्रतिकूल कोई शासन निर्बंध जहां नहीं हो सकता, प्रजाके हितके लिये ही जहांका शासन चलाया जाता है वह यह जानराज्य है। वेदमें इसका ऐसा वर्णन आया है—

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय
महते जानराज्याय। वा० य० ९।४०;१०।१८

'इसको शत्रुरहित करो, यह बड़ा पराक्रम करे। यह बड़े जानराज्यके लिये शासन करे।' बड़ा जानराज्य अर्थात् जनताका हित करना ही एकमात्र जहां ध्येय है ऐसे राज्य-शासनके लिये यत्न करना चाहिये। आज जिसको लोक-राज्य कहते हैं वही यह है। इस तरहके शासनमें प्रजाके हितका विरोध होना भी संभव नहीं है। सब ध्येय प्रजाका सच्चा और स्थायी हितका साधन करना ही है। प्रजाजनोंका हित करनेके लिये यहांके अधिकारी तत्पर रहते हैं। और प्रजा भी उत्तम नियमोंका पालन करनेमें तत्पर रहती है, इसलिये यह राज्यशासन प्रजाहित करता है।

स्वराज्य शासन

१३ स्वराज्यं (स्वाराज्यं)-स्वराज्यका वर्णन वेदके ही मंत्र द्वारा किया गया है वह मंत्र अब देखिये—

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये। ऋ. ५।६६।६

"हे विशाल दृष्टिवालो, हे मित्र भावसे बर्तनेवालो और हम सब विद्वान् मिलकर विस्तृत तथा बहुतों द्वारा जिसका पालन किया जाता है ऐसे स्वराज्यमें सब लोगोंका हित साधन करनेके लिये यत्न करेंगे।"

इस मंत्रमें स्वराज्यका लक्षण किया है। यह स्वराज्य "बहु+पाय्य" है। बहुतोंकी संमतिसे इसका पालन किया जाता है। बड़ी राष्ट्रसमिति होती है जो सब प्रजा जनों द्वारा चुनी जाती है। इसमें विद्वान् ज्ञानी, विशाल दृष्टीवाले तथा मित्रके समान जनताका हित करनेवाले ही चुने जाते हैं। इस समितिके सदस्योंकी बहुसंमतिसे (बहु+पाय्ये) जो नियम निश्चित होते हैं, उससे यहांका शासन चलता है। इसलिये यह शासन सबसे श्रेष्ठ शासन है। ऐसा कहा है—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यं
इयाय, यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम्॥
अथर्व १०।७।३१

"सूर्योदयके पूर्व और उषःकालके पूर्व ईश्वरका नाम लेकर जो ईश्वरकी भक्ति करते हैं, वे प्रथम संघटित होते हैं और उस स्वराज्यको प्राप्त करते हैं जिससे राज्यशासनोंमें कोई शासन अधिक अच्छा नहीं है।"

*

शासनोंमें सबसे श्रेष्ठ शासन स्वराज्य शासन ही है, जहां ईश्वर भक्त, विशाल दृष्टीवाले, मित्र भावसे व्यवहार करनेवाले ज्ञानी 'शासक संस्था' के सदस्य रहते हैं वहां दोष होनेकी संभावना ही नहीं रहती।

'स्व' पर बल रखो

स्वराज्य ही स्वाराज्य है। इसमें 'स्व' पर बल देनेसे 'स्व' का 'स्वा' बना है। स्व पर बल देनेका तात्पर्य यह है कि स्वराज्यमें प्रत्येक प्रजाजन 'स्व' कहलाता है। प्रत्येककी संमतिसे राष्ट्रसमिति चुनी जाती है। इसलिये प्रत्येककी संमति राष्ट्र शासनमें पहुंचती है। इस कारण 'स्व' का सुधार, 'स्व' का विकास अथवा 'स्व' की ज्ञानसे पूर्णता यहां होनी चाहिये। जितना प्रत्येक मतदार उच्च रहेगा, उतना श्रेष्ठ यह स्वराज्य होगा।

यहां शासनाधिकार अपने अथवा अपने पक्षके आधीन रखनेकी स्पर्धा नहीं है, प्रत्युत 'स्व' को अर्थात् प्रत्येक मतदाताको परिशुद्ध और परिपूर्ण करनेकी पराकाष्ठा है। इसको दर्शानेके लिये यहां स्व पर बल देकर 'स्वा-राज्य' ऐसा पद वेदने बनाया है।

इतने राज्यशासन वेदोंमें विविधमंत्रोंमें दीखते हैं। ऐतरेय आदि ब्राह्मणोंमें इन सबका एक स्थानपर उल्लेख किया है।

सब पृथिवीका एक शासक

साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं
पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं
समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः
सार्वायुषः आन्तादापरार्धात्। पृथिव्यै
समुद्रपर्यन्ताया एकराट् इति। ऐ. ब्रा.

इस वचनमें बहुतसे राज्योंका उल्लेख है। अन्तमें (समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्या एकराट्) समुद्र पर्यंतकी पृथिवीका एक आर्य राजा हो और उस सब पृथ्वी भरमें एक ही वैदिक राज्यशासनका विधान हो यह इच्छा प्रकट की है। यह एक बड़ी महत्त्वकी बात है। समुद्रपर्यंत जितनी भी पृथिवी है, उस संपूर्ण पृथ्वीपर एक आर्य राजाका राज्य हो और सब पृथ्वीपर एक ही वेदानुमोदित आर्य विधानका शासन हो। इस तरहकी घोषणा करने

योग्य राष्ट्रीय शक्ति ऋषियोंके आधीन उस समय होचुकी थी। इतना राजकीय सामर्थ्य ऋषियोंके हाथमें उस समय था। इस घोषणासे स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि लोग राज्य शासनमें अपना मन लगाते थे और प्रजाका हित करना यही एक मात्र उनका ध्येय था। इतने वैदिक मंत्रोंमें कितने विविध प्रकारके शासनोंका उल्लेख आया है। जहां जो शासन योग्य था वह वहां उन्होंने शुरू किया था। उनका अन्तिम ध्येय विश्वभरमें एक आर्य राज्यशासन हो यह था और यदि यह सफल हो जाता, तो निःसंदेह जगत्का कल्याण हो जाता। पर विश्वभरके एक राज्यशासनकी घोषणा तो उन्होंने की, पर वह बना नहीं। वह उनकी घोषणा अधूरी रही। वह अब हमें यत्न करके सिद्ध करनी चाहिये।

यह जो अन्तिम "बहुपाक्य स्वराज्य" नामक राज्यशासन कहा, इसकी कुछ विशेषताएं हैं, उनका थोडासा विचार अब हम करेंगे।

स विशोऽनुव्यचलत्। तं सभा च समितिश्च
सेना च सुरा चानुव्यचलन्॥ अथर्व. १५।९

"जो राजा प्रजाके अनुकूल रहकर अपना राज्य शासन चलाता है, उस राजाको सभा, समिति, सेना और धनकोश अनुकूल रहते हैं।" किसी भी राजाका सामर्थ्य सभा, समिति, सेना और धनकोशकी अनुकूलता रहनेसे ही होता है। यदि राजाको इनकी अनुकूलता न प्राप्त हुई, तो वह राजा प्रजाको नहीं सता सकता। वैदिक समयमें ग्रामसभा और राष्ट्र समिति स्वतंत्र रीतिसे अपना कार्य करती थी। और मंत्री मण्डलके अधीन धनकोश और सेना रहती थी। इसलिये राजा बलवान बनकर किसीको सताने लगे यह होना असंभव ही था। और राजाको सुशिक्षासे सुशिक्षित भी किया जाता था इसलिये वह मर्यादासे बाहर नहीं जाता था।

यहांका 'सुरा' शब्द मद्यवाचक नहीं है। सुर ऐश्वर्य अर्थवाले सुरसे सुरा पद बना है। इस कारण इसका यहां अर्थ धन ऐश्वर्य संपत्ति राष्ट्रीयकोश ऐसा है। इनकी अनुकूलता उस राजाको मिलती है कि जो प्रजाके अनुकूल राज्य शासन चलाता है। वैदिक राज्य व्यवस्थामें सभा समितिका स्वातंत्र्य और सेना तथा धनकोशका प्रजाके आधीन होना ये मुख्य बातें हैं। इससे स्पष्ट पता चलता है कि, उस शासनको चलानेवाली जनता भी अच्छी प्रबुद्ध थी। ये अधिकार विधानने दिये, तो भी उनको योग्यरीतिसे वर्तना, तो चाहिये। अन्यथा केवल विधानके नियम ही किसीको सुख नहीं दे सकते।

राष्ट्रकी सेना, राष्ट्रीय सेनाके शास्त्रास्त्र तीक्ष्ण करनेका कार्य वैदिक समयमें पुरोहितका है। अर्थात् पुरोहित सेनाका निरीक्षण करता है, शास्त्रास्त्र ठीक करके रखता है। युद्धकी तैयारी करता है। राजा और क्षत्रिय इसके पश्चात् युद्ध करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जनताके नेता पुरोहितके आधीन सेना और शास्त्रास्त्र थे। इसलिये राज्याभिषेकके समय पुरोहित कहता है—

प्रजाके द्वारा राजाका स्वीकार

त्वां विशो वृणतां राज्याय
त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः॥
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो वहन्तु
उपसद्यो नमस्यो भवेह॥ अथर्व ३।४।२,१

"हे राजन्! सब प्रजा अपने राज्यशासन करनेके कार्यके लिये तुम्हारा स्वीकार करे। पांचों प्रकारके प्रजाजन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचों लोग तुमको ही चाहें। सब प्रजा तुमको ही बुलावे और तुम सबके आदरका भाजन बनो।"

यह पुरोहितका अधिकार था। पुरोहित यहां सब जनताने अपना नेता बनाकर (पुरः) आगे (हितः) रखा होता है। वह जनताका नेता होकर यह भाषण करता है। इससे राजाका प्रजासंमतिसे राजगद्दीपर आना और प्रजासंमतिसे ही राजगद्दीपर रहना सिद्ध होता है। वैदिक समयमें प्रजामें इतना बल था, क्योंकि ऋषि लोग प्रजाके निःस्वार्थी तथा सच्चे हितैषी पुरोगामी नेता थे। वे कहते थे कि—

राष्ट्रमें जाग्रत रहो

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।
वा. यजु. ९।२३ श. ब्रा. ५।२।२।५

" अपने राष्ट्रमें आगे बढनेवाले नेता होकर हम जागते रहेंगे। " जनताके नेता ऋषि होंगे तो वे कभी अन्याय करेंगे नहीं, वे सन्मार्गसे ही जनताको ले जायंगे और उनको अन्तमें सुखी करेंगे। प्रजा और राजाके सच्चे हितका जो मार्ग होगा वही उनके सामने होगा। उनको पता था कि—

प्रजामें राजाका आश्रय

विशि राजा प्रतिष्ठितः। यजु. २०।९

' प्रजाके आधारसे राजा रहता है। ' यह उस समयके सब विद्वान लोग जानते थे। प्रजा भी अपना सामर्थ्य जानती थी, उस प्रजाके नेता ऋषि भी वेदके राष्ट्र शासन विषयक ज्ञानको जानते थे, राजा भी प्रजा ही मेरा अन्तिम आधार है यह जानता था। इसलिये कोई भी अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता था अतः सब सुखी थे। राजा मानता था कि—

विशो मे अंगानि सर्वतः। यजु. २०।९

' प्रजाजन ही मेरे शरीरके अवयव हैं। ' प्रजाजन मिलकर ही राजा होता है। प्रजा और राजाकी एकरूपता इस तरह जहां होगी वहां दोनोंका कल्याण होनेमें संदेह ही नहीं है। इस समय लोग आशीर्वाद देते थे वह भी राष्ट्रीय आशीर्वाद था देखिये—

राष्ट्रके साथ बढो

अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्रवर्चसा इमौ स्तामनुपक्षितौ॥
अथर्व० ६।७८।२

यह आशीर्वाद वधुवरोंके लिये है। इसमें क्या कहा है देखिये— " हे वधुवरो ! तुम दोनों दूध पीकर हृष्ट हो जाओ। तुम दोनों राष्ट्रकी उन्नतिके साथ अपनी उन्नति कर लो। हजारों प्रकारके ऐश्वर्योंसे तुम दोनों युक्त हो जाओ। "

यह है आशीर्वाद। वधुवर ये दोनों विवाहके समय विवाह बद्ध होकर गृहाश्रममें प्रविष्ट हो रहे हैं। स्वार्थवश होकर ये अपने सुखको बढानेके लिये अपने राष्ट्रका घात न करें। इसलिये इस आशीर्वादमें कहा है कि- " राष्ट्रेण अभिवर्धतां " हे वधुवरो ! तुम दोनों अपने राष्ट्रके हितके साथ अपने हितकी साधना करो। कितनी सावधानता वेद यहां बता रहा है। इस तरह शिक्षित और दीक्षित होकर जो गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होंगे उनसे अपने राष्ट्रका कभी अहित नहीं होगा। और भी एक मंत्र यहां राष्ट्रसेवाका उपदेश करनेवाला देखने योग्य है–

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि
शतशारदाय॥ अथर्व० १९।३७।३

" अन्न, बल, सामर्थ्य, शत्रुका नाश करनेकी शक्तिके लिये और राष्ट्रसेवा करनेके लिये तथा दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये मैं इस पदार्थका धारण करता हूं। " किसी पदार्थका धारण करनेके समय " राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये मैं इसको धारण करता हूं। " ऐसा कहना राष्ट्रसेवाके लिये तैयार रहनेकी सूचना देता है।

वैदिक सूक्तोंमें राष्ट्रशासनके कितने उच्च भाव हैं इसका पता इस लेखसे लगेगा। इसी कार्यके लिये यह लेख है। अब राष्ट्र संरक्षणका विचार करते हैं क्योंकि बिना संरक्षणके राष्ट्र रह ही नहीं सकता।

राष्ट्रका संरक्षण करनेके लिये कीले

राज्य शासनका विचार करनेके समय राष्ट्रके संरक्षणका विचार अवश्य करना चाहिये। इससे पूर्व " बहु पाय्य स्वराज्य " के मंत्रमें बताया ही है कि, राष्ट्रशासनके विधान राष्ट्रसमिति बनावे कि जो समिति (ईयचक्षाः) विशाल दृष्टीवाले, (मित्रः) मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और (सूरयः) ज्ञानी विद्वानोंकी बनी हो। ऐसे लोगोंकी बहुमतिसे जो विधान तैयार होगा वह निर्दोष होगा, इसमें संदेह नहीं है। इसी विद्वत्समितिसे राष्ट्रका शासन होगा। अब राष्ट्रके संरक्षणका विचार करना है। इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है–

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
अथर्व १०।२।३१

' देवोंकी अयोध्या नगरी नौ द्वारोंवाली और आठ चक्रोंवाली है। इसमें सोनेका धनकोश है वह ज्योतिसे घिरा हुआ स्वर्ग ही है। ' इस मंत्रमें सुरक्षित नगरीका वर्णन है। इस नगरीके बाहर चारों ओर दुर्ग (कीला)

हो। बाहरसे अन्दर आने और अन्दरसे बाहर जानेके लिये इस दुर्गकी दीवारमें नौ द्वार हों। इस दुर्गकी दीवारपर आठ चक्र अर्थात् उल्हाट यंत्र लगे हों, जिनसे शत्रु आनेपर उस शत्रुपर इन अस्त्रोंका हमला हो सके और शत्रुका पराभव हो सके। इस तरह नगरी सुरक्षित हो।

नगरी 'अ-योध्या' हो, अर्थात् शत्रु आकर युद्ध भी करे, पर यह नगरी उसके प्रयत्नसे पराभूत न हो, ऐसी जो अभेद्य नगरी होगी, वही 'अ-योध्या' नगरी कहलायेगी। शत्रु द्वारा अभेद्य नगरी हो। दुर्गकी दीवार पर शत्रुका पराभव करनेके सब सामान तैयार रहें। कीलेकी दीवारके अन्दरके द्वार मजबूत हों। शत्रु उनको तोड न सके, ऐसे वे द्वार सबके सब दुर्भेद्य हों। द्वार नौ हों या कम ज्यादा हों, यह तो उस नगरीके विस्तारपर अवलंबित रहेगा।

सात दीवारें हों

सप्तास्यासन् परिधयः। ऋ. १०।९०।१५

इस दुर्गकी सात परिधियां हों, अर्थात् एकके अन्दर दूसरी ऐसी सात दीवारें दुर्गकी हों। बाहरकी दीवार कदाचित् टूट जानेपर भी अन्दरकी दीवार अच्छी दुर्भेद्य हो। ऐसी एकके अन्दर दूसरी इस तरह सात दीवारें हों। इन सबके अन्दर मुख्य राजा, धनकोश, ज्ञानका केन्द्र, जो भी, सुरक्षित रखने योग्य है, वह सब इन सात दीवारोंके अन्दर सुरक्षित हो। इस तरह शत्रुके लिये अभेद्य नगरी हो। इसमें नागरिक रहें। बाहरकी कक्षामें लडाई करनेवाले रहें, अन्दरकी कक्षामें विद्वान तथा जो उत्तमसे उत्तम ज्ञानी हों वे वहां रहें।

पूर्वोक्त मंत्र वस्तुतः अध्यात्मका वर्णन करते हैं और साथ साथ नगरीको सुरक्षित रखनेका भी उपदेश देते हैं। यही रीति वेदमें हैं, जिससे वेदमें इस विषयका ज्ञान दिया है। पञ्च कोश और सप्त शरीरका जो वर्णन अध्यात्ममें है, वही राष्ट्ररक्षाका विचार करनेके समय संरक्षणकी विधि बताता है। कोश वा शरीर एक दूसरेके अन्दर जैसे रहते हैं, इस तरह नगरीके कीलेकी दीवारें हों। यह नगरीकी बाहरकी दीवार दो चार सौ मील लंबी भी हो सकती है। इससे भी बडी होगी। और उत्तम सदाचारी और उत्तम ज्ञानी जो होंगे वे मध्य भागमें रहेंगे। इस स्थानका नाम 'स्वर्ग' है। यही 'सुवर्ग लोक' है, उत्तम वर्गमें जिनकी गणना होना संभव है, वे ही इस केन्द्रमें रहेंगे और बाहरके स्थानमें वे लोग रहेंगे, जो लडाके होंगे और जो सुवर्गमें नहीं रह सकते। इस तरह नगरकी रचना करनी चाहिये। गुण्ड लोग अन्दरके मध्य केन्द्रमें आ भी न सकें, ऐसा प्रबंध होना चाहिये।

सुवर्गके लोगोंका स्थान

इस नगरीके संबंधका वर्णन करनेका प्रसंग आजाय तो वह ऐसा बनेगा—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो। नाना-
हिताग्निः नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

छांदोग्य ५।११।५

'मेरे राज्यमें चोर, कंजूस, मद्यपि, अयाजक, अज्ञानी, स्वैराचारी नहीं है फिर स्वैरिणी कहांसे मिलेगी।'

सुवर्ग लोकमें ऐसी ही जनसंख्या रहेगी। वास्तवमें सभी राष्ट्रमें ऐसे लोक होने चाहिये पर वैसा हो या न हो, पर नगरके मुख्य केन्द्र विभागमें तो ऐसी बस्ती रखनेका प्रबंध राज्यशासन व्यवस्थासे किया जा सकता है। और बाहरके विभागोंमें उसकी अपेक्षासे कम योग्यतावाले रह सकते हैं। जब वे बाहरके लोग अपना सुधार करेंगे, तब वे भी उस सुवर्ग लोकमें जाकर रहनेका अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।

इस तरह आत्मसंयम और आत्मसुधार करनेसे सुवर्ग लोकमें वे सुसंस्कृत हुए लोग जाकर रह सकते हैं। सत्कर्मसे स्वर्ग प्राप्त होनेका भाव यह है अस्तु संरक्षणका प्रश्न इस तरह महत्त्वका है और सुवर्ग और दुर्वर्गकी बस्तियोंका भी प्रश्न इस संरक्षणके प्रश्नके साथ ही घनिष्ठ संबंध रखता है। यदि सर्वत्र गुण्डोंका प्रवेश होता रहेगा, तो कोई स्थान सुरक्षित नहीं हो सकेगा। इसलिये सदाचार संपन्नोंको सुवर्ग लोकमें चढाना और दुराचारियोंका दुर्वर्ग लोकमें-नरकलोकमें—गिराना योग्य है। 'नर-क' का अर्थ मनुष्योंने अपने कर्मसे बनाया स्थान। 'सुवर्ग' वह है जो अच्छे कर्म करनेवाले सज्जनोंका निवास स्थान है। इस तरह नागरिकोंकी सुरक्षाके लिये ऐसा कर्माचरणानुसार वर्गवारीसे रहनेका प्रबंध करना योग्य है।

इसके साथ अब प्रजाजनोंकी सुरक्षाका अधिक विचार करना चाहिये वह यह है—

अमितैः महोभिः शतं आयसीभिः पूर्भिः पाहि । ऋ. ७।३।७

'अपरिमित सामर्थ्योंसे युक्त सैकडों कीलोंसे राष्ट्रका संरक्षण करो।' अर्थात् राष्ट्रमें ऐसी सैकडों नगरियां हों कि जिनके चारों ओर ऐसे कीले हों। प्रत्येक नगर कीलोंवाला ही हो ऐसी बात नहीं है। पर बीच बीचमें कीलोंवाले सुरक्षित नगर अवश्य होने चाहिये। एक ऐसा नगर आजू बाजूके अनेक नगरोंका संरक्षण कर सकता है।

कीलेका शूर अधिपति

कीलेका संरक्षण करनेवाला अधिपति उत्तमसे उत्तम वीर हो—

अद्रेः धार्सि भानुं कविं शं राज्यं पुरंदरस्य
महानि व्रतानि गोभिः आविवासे । ऋ. ७।६।२

'(अद्रेः धार्सि) कीलेका संरक्षण करनेवाला वीर तेजस्वी हो (कविं) ज्ञानी हो, समझदार हो, (शं राज्यं) अपने प्रजाजनोंको सुख देनेके उद्देश्यसे राज्यशासन करनेवाला हो, (पुरंदरः) शत्रुके कीलोंको तोडनेवाला हो, परंतु अपने कीलेका उत्तम रक्षण करनेवाला हो, ऐसे वीरके बडे बडे कृत्योंका मैं वर्णन करता हूं।' इस मंत्रमें कहा है कि कीलेका रक्षक अधिकारी कैसा हो। ज्ञानी, तेजस्वी, राज्यमें शान्ति रखनेवाला शूरवीर हो। अनेक वीरोंमेंसे चुनकर जो उत्तमसे उत्तम हो उसीको दुर्गरक्षक बनाना चाहिये।

'आयसीः पूः' लोहनगरी पूर्वस्थानमें कही है। यहां लोहनगरी लोहेसे बनायी नगरी ऐसा ही अर्थ इसका नहीं है। 'आयसीः पूः' का अर्थ उत्तम पत्थरोंसे बनी दीवार ऐसा इसका अर्थ है। इसके बीचमें लोहा लगा हो, परंतु पत्थरोंकी दीवारोंका नाम भी 'आयसी' होता है।

वधस्नैः देह्याः अनमयत् । ऋ. ७।६।५

'वधकारक शस्त्रोंसे गुण्डोंको नम्र करता है,' गुण्डेका गुण्डापन दूर करता है। गुण्डोंका सुधार करनेका यह साधन है। कीलेका अधिकारी यह कार्य करे।

अनाधृष्टः नृपीतये शतभुजिः मही आयसीः पूः।
ऋ. ७।१५।१४

'शत्रुद्वारा अपराजित और प्रजाजनोंका संरक्षण करनेके लिये सैकडों वीर जहां रहते हैं; ऐसी बडी लोहेकी नगरी हो।' यहां भी कीलेका ही वर्णन है। ऐसी कीलेवाली नगरीका उद्देश्य (नृ-पीतिः) प्रजाका संरक्षण होना यह मुख्यतया है। वहां जो वीर हों वे (अनाधृष्टः) शत्रुद्वारा अपराजित हों। सदा विजयी हों।

समन्यवः सेनाः सभरन्त । ऋ. ७।२५।१

'उत्साही सेनाएं अच्छी तरह युद्ध करती है।' इसलिये अपनी सेनाका उत्साह बढाना चाहिये और उनको बडे पराक्रम करनेके लिये उत्साहित करना चाहिये।

सेनामें शूरोंकी भरती हो

विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः । ऋ. । ७।३०।२

'सब लोगोंमें जो शूर हैं वही सेनामें भरती करनेके लिये योग्य हैं।' यह सूचना महत्त्वकी है। जनतामें जो शूर होते हैं उनको ही सेनामें भरती करनेसे सब सेना शूरों की होगी, जो उत्तम युद्ध कर सकेगी।

महासेनासः अमेभिः शत्रुं तपन्ति। ऋ. ७।३४।१९

'बडी सेनावाले वीर अपने सामर्थ्योंसे शत्रुको ताप देते हैं।' राष्ट्रसंरक्षणके लिये ऐसी सेनाएं खडी रहनी चाहिये, तब राष्ट्रका संरक्षण होगा।

गणः तुविष्मान् । ऋ. ७।५६।७

"संघ बलवान होता है।' इसलिये अपने संघ या गण बनाकर गणोंके द्वारा शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये। वैयक्तिक आक्रमणसे गणशः आक्रमण अधिक परिणामकारक होता है।

जनानां विधर्ता वीरः शुष्मी अस्तु। ऋ. ७।५६।२४

'प्रजाजनोंका धारण करनेके लिये जो वीर नियुक्त किया जाय, वह बलवान हो।' वह निर्बल नहीं होना चाहिये। निर्बल पुरुष संरक्षणका कार्य ठीक तरह नहीं कर सकता।

राजाका पुरोहित

राजाका पुरोहित राष्ट्र संरक्षणके कार्यमें कितना महान् कार्य करता है, यह यहां देखना आवश्यक है। आजके पुरोहित श्राद्ध और तर्पण ही करते हैं, पर प्राचीन समयके पुरोहित राष्ट्रके संरक्षणका महान कार्य करते थे। इस विषयमें ये मन्त्र देखिये—

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम् ।
संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णुः येषां अस्मि पुरोहितः ॥ १ ॥

सं अहं एषां राष्ट्रं स्यामि सं ओजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषा अहम् ॥ २ ॥

नीचैः पद्यन्तां अधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणा अमित्रान्, उन्नयामि स्वान् अहम् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेः तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषां अस्मि पुरोहितः ॥ ४ ॥

एषां अहं आयुधा संस्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णु एषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥ ५ ॥

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनानि उद् वीराणां जयतां एतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्तः उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६ ॥

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽवलधन्वनो हतोग्रायुधा अवलान् उग्रबाहवः ॥ ७ ॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जय अमित्रान् प्र पद्यस्व जहि एषां वरं वरं ।
मा अमीषां मोचि कश्चन ॥ ८ ॥ अथर्व० ३।१९

(मे इदं ब्रह्म संशितं) मेरे राष्ट्रका यह ज्ञान अत्यंत तेजस्वी है । मेरे राष्ट्रका यह (वीर्यं बलं संशितं) वीर्य और बल भी तेजस्वी है । (संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु) मेरे राष्ट्रका तेजस्वी क्षात्र सामर्थ्य कभी कम न हो, कभी क्षीण न हो । (येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि) जिनका मैं पुरोहित हूं, उनका बल बढना ही चाहिये ॥ १ ॥ (अहं एषां (राष्ट्रं संस्यामि) मैं इनके राष्ट्रको तेजस्वी करता हूं, इनका (ओजः वीर्यं बलं संस्यामि) बल, सामर्थ्य और सैन्य में तेजस्वी बनाता हूं । (अनेन हविषा शत्रूणां बाहून् वृश्चामि) इस हवनसे मैं शत्रुके सैन्यके बाहुओंको काटता हूं ॥ २ ॥ वे सब शत्रु (नीचैः पद्यन्तां) नीच गिर जांय, वे (अधरे भवन्तु) अवनत हो जांय, (ये नः मघवानं सूरिं पृतन्यात्) जो हमारे धनी और ज्ञानियोंपर सैन्य भेजते हैं, और अपने सैन्यसे हमारे ज्ञानी और धनी लोगोंको कष्ट देते हैं, (अमित्रान् अहं ब्रह्मणा क्षिणामि) उन शत्रुओंको मैं क्षीण करता हूं, निर्बल करता हूं और (स्वान् उन्नयामि) स्वकीयोंकी मैं उन्नति करता हूं ॥ ३ ॥ मैं जिनका पुरोहित हूं उनके शस्त्र तथा अस्त्र (परशोः तीक्ष्णीयांसः) परशुसे भी तीक्ष्ण हों, तथा (अग्नेः तीक्ष्णतराः) अग्निसे भी अधिक तीखे हो, (इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसः) इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण हों । अर्थात् जिनका मैं पुरोहित हुआ हूं उस राष्ट्रके शस्त्र शत्रुके शस्त्रोंसे अधिक मारक हों ऐसा यत्न मैं करूंगा ॥ ४ ॥ (एषां आयुधा संस्यामि) इन वीरोंके आयुध, शस्त्र, अस्त्र मैं तीक्ष्ण करता हूं । (एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि) इनके राष्ट्रको मैं उत्तम वीरोंका राष्ट्र बनाकर बढाता हूं । राष्ट्रको प्रथम वीरोंका राष्ट्र बनाऊंगा और उस राष्ट्रकी सब प्रकारकी उन्नति करूंगा । (एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु) इनका क्षात्र बल कभी क्षीण होनेवाला न हो, तथा वह विजयी भी हो । कभी उसका पराभव न हो ऐसा मैं यत्न करता हूं । (विश्वे देवाः एषां चित्तं अवन्तु) सब देव इनके चित्तका रक्षण करें ॥ ५ ॥

हे (मघवन्) धनवान् राजन् ! (वाजिनानि उद्धर्षन्तां) सैन्योंका उत्साह बढाओ, (जयतां वीराणां घोषः उदेतु) शत्रुका पराभव और अपना विजय करनेवाले सैनिकोंका घोष–विजयकी घोषणाका शब्द–ऊपर उठे, यह घोषणा प्रभावी सिद्ध हों । (केतुमन्तः उलुलयः घोषाः पृथक् उदीरतां) झंडे हाथमें लेकर शत्रुपर हमला करनेवाले हमारे वीर सैनिकोंके शब्द पृथक् पृथक् आकाशमें गूंजते रहें । (इन्द्रज्येष्ठा मरुतः देवाः सेनया यन्तु) इन्द्रकी अध्यक्षतामें मरनेके लिये तैयार हुए वीर हमारी सेनाके साथ आगे बढें । इस तरह हमारी सेनाके लिये बडा सहाय्य प्राप्त होता रहे ॥ ६ ॥

हे (नरः) वीरो ! (प्र इत) आगे बढो, (जयत) जय प्राप्त करो, (वः बाहवः उग्राः सन्तु) आपके बाहु बडी वीरता दिखानेवाले हों । हे (तीक्ष्ण–इषवः) तीखे बाणोंको

बर्तनेवाले वीरो ! हे (उग्रायुधाः) तीक्ष्ण आयुधोंवाले सैनिको, हे (उग्र-बाहवः) वीरतासे जिनके बाहु स्फुरणको प्राप्त हो रहे हैं ऐसे वीरो ! (अ-बल-धन्वनः अबलान् हत) निर्बल धनुष्यवाले शत्रुके निर्बल सैनिकोंकी कत्तल करो ॥ ७ ॥

हे (ब्रह्म-संशिते शरव्ये) ज्ञानके द्वारा तेजस्वी बने हमारे शस्त्रो ! (अवसृष्टा परापत) भेजे जानेपर दूर शत्रुपर जाकर गिरो, (अमित्रान् जय) शत्रुओंका पराभव करो, (प्र पद्यस्व) आगे बढकर शत्रुपर हमला करो, (एषां वरं वरं जहि) इनमेंसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीरोंका वध करो, (अमीषां कञ्चन मा मोचि) इन शत्रु सैनिकोंमेंसे किसीको न छोडो अर्थात् सब शत्रुओंका वध करो ।

यह पुरोहितका कार्य है । ऐसे पुरोहित जिस राष्ट्रमें होंगे, उस राष्ट्रका विजय होगा, इसमें संदेह ही नहीं है । यहां पुरोहित राष्ट्रीय सैन्यकी देखभाल करता है, सैनिकोंके शस्त्र अस्त्र शत्रुकी अपेक्षा अच्छे हैं या नहीं इसकी व्यवस्था करता है, शत्रु कौन है, उसकी तैयारी कैसी है, इसका ज्ञान प्राप्त करता है और शत्रुसे अधिक अपनी तैयारी करता है । सैनिकोंका संचालन करता है, सैनिकोंमें उत्तमोत्तम वीरोंकी भरती करता है, सैनिकोंका उत्साह बढाता है और अपने राष्ट्रका विजय संपन्न करता है । ब्राह्मणोंके अनेक कार्योंमें यह भी एक राष्ट्रीय कार्य है । आजके भारतके ब्राह्मण इस कार्यको भूले हैं ।

ईश्वरभक्तिसे बलप्राप्ति

युनज्मि ते उत्तरावन्तं इन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते । यः त्वा करद् एकवृषं जनानां उत राज्ञां उत्तमं मानवानाम् ॥ अथर्व० ४।२२।५

(येन जयन्ति) जिससे विजय प्राप्त करते हैं और (न पराजयन्ते) कभी भी पराजय नहीं होता है । तथा (यः त्वा जनानां एकवृषं) जो तुझको मनुष्योंमें अद्वितीय बलवान् करता है और (मानवानां राज्ञां उत्तमं करत्) मानवोंमें और राजाओंमें उत्तम करता है उस (उत्तरावन्तं इन्द्रं ते युनज्मि) श्रेष्ठ गुणवाले प्रभुके साथ मैं तेरा संबंध जोडता हूं । तू परमेश्वरकी भक्ति कर और श्रेष्ठ बल प्राप्त करके उत्तम बलवान् बन ।

अपना बल बढे और अपना बल कभी न घटे ऐसा प्रयत्न होना चाहिये । अपना सदा जय ही हो और कभी अपना पराजय न हो । ऐसा होनेके लिये प्रभुकी भक्ति करनी चाहिये । ईश्वरभक्तिसे जो सामर्थ्य प्राप्त होता है, उससे मनुष्य सामर्थ्यवान् होता है । और विजयी होता है । इसी तरह ईश्वरभक्तिसे मनुष्य बुरे कर्म करनेसे बचता है । इसलिये वह सब मानवोंमें श्रेष्ठ और सब राजाओंमें उत्तम होता है । जो ईश्वरको नहीं मानते उनको यह बल प्राप्त नहीं होता ।

उत्तरस्त्वं अधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवः ते । एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाँ शत्रूयतां आभरा भोजनानि ॥ अथर्व० ४।२२।६

हे राजन् ! (त्वं उत्तरः) तू अधिक उच्च हो, (ते सपत्नाः अधरे) तेरे सब शत्रु नीचे हों, (ये के च ते प्रतिशत्रवः) जो कोई तेरे शत्रु हैं वे भी नीचे हों । तू ही उनके ऊपर विराज । तू ही (एक-वृषः) एकमात्र बलवान् है और (इन्द्रसखा) प्रभुका मित्र बनकर (जिगीवान्) विजयी होकर (शत्रूयतां भोजनानि आभर) शत्रुता करनेवाले दुष्टोंके उपभोगके सब साधन यहां ले आ । उनके पास भोगके साधन न रहें ऐसा कर ।

सिंह प्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽवबाधस्व शत्रून् । एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाँ शत्रूयतां आ भरा भोजनानि ॥

अथर्व० ४।२२।७

(सिंह प्रतीकः) सिंहके समान प्रतापवान् बनकर (सर्वाः विशः अद्धि) सब प्रजाजनोंसे कर प्राप्त करके उसी अंशका भोग कर । (व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अव बाधस्व) व्याघ्रके समान समर्थ बनकर सब शत्रुओंको अपनेपर हमला करनेमें बाधा उत्पन्न कर । (मन्त्रका अन्य भाग पूर्व मंत्रके समान ही है) ।

राजाको करका अर्पण

यहां इस मंत्रमें सिंहके समान प्रभावी बन और (सर्वाः विशः अद्धि) सब प्रजाजनोंको खा ऐसा पदशः अर्थ है । पर यह पूर्वापर मंत्रोंके कथनसे विरुद्ध है । यहांके इन पदोंका सच्चा अर्थ यह है कि राजा अपना शासन व्यवहारका सब व्यय प्रजाजनोंसे प्राप्त धनसे ही करे ।

'कर, बलि, राजस्व' ये पद प्रजासे लिये करभारके लिये संस्कृत भाषामें प्रयुक्त होते हैं। प्रजासे राजा कर लेवे और उससे अपने सब शासनका व्यय चलावे, यह भाव इस मंत्रभागका है। वैदिक राष्ट्रगीतमें—

'वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम' अथर्व १२।१।६०

'हम सब प्रजाजन तुम्हें कर देनेवाले होकर रहेंगे' ऐसा कहा है। इसका भाव ही इस मंत्रमें है। प्रजा कर देवे और उस करसे राजा शासन चलावे। यह भाव यहां स्पष्ट दीखता है। राजाको अपना शासन व्यय चलानेके लिये धन चाहिये। प्रजा उस करको अवश्य देवे। कदापि राजाको कर देनेमें हिचकिचाहट न करे। उत्तम प्रजाका यही लक्षण है। दुष्ट प्रजा वह है कि जो राजाको कर नहीं देती। ठीक हिसाब नहीं बताती और राजाको ठगाती है। उत्तम प्रजा योग्य कर देती है।

आयका छठां भाग राजाको करस्वरूपमें देना चाहिये। प्रजा इस भागको राजाके पास पहुंचावे और राजा उसीमेंसे सब शासन व्यय भुगतावे। इस तरह राजा और प्रजा इन दोनोंके कर्तव्य यहां बताये हैं। "वयं बलिहृतः स्याम" यह वचन प्रजाजन अपने राष्ट्रगीतमें बोल रहे हैं। प्रजाजन स्वयं कह रहे हैं कि 'हम स्वयं कर देनेवाले बनकर इस राज्यमें रहेंगे।' राजा जबरदस्तीसे कर लेगा ऐसा यहां नहीं है, पर प्रजा ही स्वयं कर राजाके पास पहुंचा देती है। वह जानती है कि कर देना प्रजाका कर्तव्य है।

जो प्रजा अपने राजाको कर न देनेका विचार करती है, नाना युक्तियोंसे कर कम देनेका सोचती है, हिसाबोंमें मिथ्या कपटजाल करके राजाको ठगाती है वह प्रजा रक्षणीय नहीं हो सकती। कर देनेके विषयमें यहां इतना ही लेख पर्याप्त है। प्रजाका कर्तव्य राजाको कर देना है और राजाका कर्तव्य प्रजाका उत्तम प्रकारसे रक्षण करके प्रजाकी सब प्रकारकी उन्नति करना है। इस तरह राजा और प्रजा अपने कर्तव्य पालन करते रहेंगे तो दोनोंके लिये यहां सुख हो सकता है।

शूरके लक्षण

प्रजाका संरक्षण राजा शूरपुरुषोंद्वारा करवाता है। इसलिये शूर पुरुषोंके लक्षण वेद किस तरह बताता है, यह अब देखना आवश्यक है—

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व
सनिता धनानि। तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा
समत्सवाळहः साह्वान् पृतनासु शत्रून्॥
ऋ. ९।९०।३

(शूरग्रामः) शूरोंका संघ बनानेवाला, (सर्ववीरः) सब प्रकारके वीरोंको अपने पास रखनेवाला, (सहावान्) शत्रुका पराभव करनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण शस्त्रोंको बर्तनेवाला, (क्षिप्र-धन्वा) अतिशीघ्र धनुष्योंसे बाण शत्रुपर फेंकनेमें प्रवीण, (समत्सु अषाळहः) युद्धोंमें शत्रुके लिये अजिंक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) सेनाओंके युद्ध होनेके समय शत्रुओंका पराभव करनेवाला, (धनानि सनिता) धनोंका दान करनेवाला, तू वीर है, तू सब प्रजाजनोंको सुरक्षित करके सबको पवित्र बनाओ।

इस मंत्रका प्रत्येक शब्द वीरके लक्षण बता रहा है। वीर ऐसा हो। ऐसे वीरोंको राष्ट्रके संरक्षणके कार्यमें लगाया जावे। ये वीर ही शत्रुको दूर करनेमें समर्थ हो जायेंगे और इनके प्रयत्नसे राष्ट्र सदा सुरक्षित रह सकता है।

जो राजा प्रजाका रक्षण करता है उसका वर्णन थोडासा और देखिये—

हन्ति रक्षः बाधते परि अरातीः
वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा॥ ऋ. ९।९७।१०

(वृजनस्य राजा) बलका स्वामी राजा (वरिवः कृण्वन्) धन निर्माण करता है, (रक्षः हन्ति) राक्षसोंका वध करता है और (अरातीः परिबाधते) शत्रुओंको सब ओरसे बाधा पहुंचाता है। और देखिये—

रक्षसः संपिनष्टन॥ १८॥
यातूनां पराशरः अभवत्॥ २१॥
पुमांसं यातुधानं जहि
मायया शासदानां स्त्रियं जहि॥ २४॥
प्रति चक्ष्व, जागृतं, रक्षोभ्यो वधं,
यातुमद्भ्यः अशनिं अस्यतम्। ऋ ७।१०४।२५

'राक्षसोंका चूर्ण करो, यातना देनेवालोंको दूर करनेवाले बनो, दुष्ट पुरुषका वध करो, कपटी ताप देनेवाली स्त्रीका भी वध करो। देखो, जागो, दुष्टोंको वध और यातना देनेवालोंके ऊपर बिजली जैसे अस्त्र फेंको और इन

सबको दूर करो। समाजमें ये न रहें ऐसा करो। इनको दूर करके समाजकी सुरक्षा करो।

और देखो—

विश्वा अरातीः तपोभिः अपदह। ऋ. ७।१।७
अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि। ऋ. ७।१।१४
दस्यून् ओकसः आजः। ऋ. ७।५।६

'सब शत्रुओंको ज्वालाओंसे जला दो। पापी धूर्त हिंसक शत्रुसे प्रजाका संरक्षण करो। अपने घरसे घातपात करनेवालोंको दूर करो।' तथा—

अंहसः नः रक्ष।
रिषतः तपिष्ठैः दह। ऋ. ७।१५।१३

'पापियोंसे हमें सुरक्षित रखो। घातकोंको जला दो।' यहां जलानेका तात्पर्य उनसे उपद्रव न हो ऐसा करना है।

वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि। ऋ ७।२५।३

'हिंसक मनुष्यके वधकारक शस्त्रका नाश कर।' अर्थात् हिंसक मनुष्यके पास शस्त्र रहने न दे। सब हिंसक क्रूर लोगोंको निःशस्त्र या शस्त्रहीन किया जाय। उनके पास शस्त्र रहेंगे तो वे उससे जनताको कष्ट देंगे। इसलिये उनके पास शस्त्र न रहे तो वे वैसे घातपात नहीं करेंगे। इसलिये दुष्ट क्रूर जनोंको शस्त्रहीन रखना चाहिये।

अज्ञाता अशिवासः दुराध्यः वृजनाः
नः मा अवक्रमुः। ऋ. ७।३२।२७

'अज्ञात मार्गसे दुष्ट हिंसक क्रूरकर्मा शत्रु हमपर कुटिलतासे आक्रमण न करें।' इतनी सुरक्षा राष्ट्रमें होनी चाहिये। ज्ञात अज्ञात, कुटिल और सरल, तथा शुभ और अशुभ सभी मार्गोंमें प्रजाजनोंका उत्तम संरक्षण होना चाहिये।

अर्यः तिर। ऋ. ७।६८।२
द्वेषः यावय। ऋ. ७।७७।४
अमित्रान् हतं। ऋ. ७।८५।२
दुःशंसं दुर्विद्वांसं आभोगं रक्षस्विनं
हन्मना हतम्। ऋ. ७।९४।१२
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने अन्वायं
द्वेषः धत्तम्। ऋ. ७।१०४।२

'शत्रुओंको भगा दो। दुष्टोंको दूर करो। अमित्रोंका वध करो। दुष्टों, अज्ञानीयों, भोगी, राक्षसोंको शस्त्रोंसे मारो। ज्ञानके द्वेष्टा, कच्चा मांस खानेवाले, क्या खांय ऐसा कहनेवाले अर्थात् सदा लूटमार करनेवाले जो महादुष्ट हैं उनका द्वेष करो।' ऐसे दुष्टोंका नियमन करो। ऐसे दुष्ट लोग राष्ट्रमें न घूम सकें ऐसा प्रबंध करो। इनके संचरण पर प्रतिबंध रखो।

अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः तपुर्वधेभिः
अजरेभिः अत्रिणः पदानि निविध्यतं,
ते निः स्वरं यन्तु। ऋ. ७।१०४।५

'अग्निके समान तपे, पत्थरोंसे मारनेके समान प्रहार करनेवाले, तप्त प्रहार करनेवाले, क्षीण न होनेवाले शस्त्रोंसे खाऊ दुष्ट लोगोंको पीठपर प्रहार करो। वे भयभीत होकर चुपचाप चले जांय।' अर्थात् कोई दुष्ट हमारे समीप न रहे।

यहां दुष्टोंके लिये 'अत्रिन्' पद है। 'अत्ति इति अत्री' जो खाता है वह अत्रि है। तथा जो 'अतति इति अत्रिः' जो भागता है वह अत्रि है। जो सज्जनोंको खा जाता है और दौडकर दूसरे स्थानमें जाकर छिपकर रहता है वह अत्रि है। यह दुष्टोंका लक्षण है। ऐसे दुष्टोंको समाजमें रहने नहीं देना चाहिये।

शत्रुके साथ सामना

शत्रुका सामना करके शत्रुका प्रतीकार कैसा करना चाहिये इस विषयके कुछ मंत्र अब देखिये—

विश्वा दृंहितानि पुरः सप्त सहसा
सद्यः वितर्दः। ऋ. ७।१८।१३

'शत्रुके सब सातों कीले अपने बलसे तूने तत्काल तोड दिये।' अपना बल ऐसा होना चाहिये।

द्रुह्यवः षष्टिः शता षट् सहस्रा षष्टिश्च
अधि षट् वीरासः निषुषुपुः।॥ १४ ॥
शत्रवः शश्वन्तः ररधुः। ऋ. ७।१८।१८

"द्रोह करनेवाले शत्रुके ६६६६ वीरोंको सुला दिया अर्थात् वध किया। शत्रु हमेशाके लिये नष्ट किये गये।" यहां हजारों शत्रुओंका वध करनेका उल्लेख है। अवसर आनेपर इतना वध करना पडता है। और ऐसा करना ही चाहिये।

नव नवतिं पुरः अहन् ऋ. ७।१९।५

' शत्रुके ९९ नगरियोंका विध्वंस किया । ' शत्रुका ऐसा नाश करना ही होता है । जब इतना नाश करनेके बिना शत्रुका बल नष्ट न हो जाय तो ऐसा वध करना ही चाहिये ।

दुर्गे मर्तासः नः अमन्ति, अमित्रान् निश्चाथाद्दि ॥
ऋ. ७।२५।२

' दुर्गमें रहकर जो प्रजाजनोंको कष्ट देते हैं, उन शत्रुओंको विनष्ट करो । ' ये पुनः कष्ट नहीं देंगे ऐसा प्रबंध करो । शत्रु कीलेमें रहा तो उसका बल बढता है । इसलिये उसका विनाश करनेके लिये बडा प्रयास करना चाहिये ।

जनताका कल्याण

राज्यशासनका ध्येय सब लोगोंका कल्याण करना है । दुष्ट लोगोंको दण्ड दिया जाता है वह शासकोंको अभीष्ट नहीं है, पर उनको दण्ड दिये बिना विश्वमें शान्ति नहीं रह सकती, इसलिये दण्ड देनेका कार्य राजा करता है । मुख्य उद्देश सबका कल्याण ही है देखिये—

विश्वे जनासः शर्मन् । ऋ. १०।६३।६

' सब लोकोंको सुख मिले ' इसलिये राज्यशासन चलाया जाता है

विश्वा अमूरा वृषणा । ऋ. ७।६१।५

' सब लोगोंको अमूढ अर्थात् ज्ञानी बनाना है, और बलवान् भी बनाना है । ' राज्यशासन इसीलिये है ।

विश्वा सुपथानि सुगाः । ऋ. ७।६२।६

' सब उत्तम मार्ग सबके जानेके लिये सुगम हों । ' अर्थात् किसी भी उन्नतिके मार्गसे जानेके लिये किसीको प्रतिबन्ध न हो । सब यथेच्छ उन्नति करें और उत्तमसे उत्तम योग्यता प्राप्त करें । अभ्युदय और निश्रेयसका मार्ग सबके लिये सुगम हो, कोई कठिनता किसीको भोगनी न पडे ।

बुद्धिमानोंकी प्रशंसा

धियः अविष्टं, पुरंधिः जिगृतं । ऋ. ७।६४।५

' बुद्धियोंकी सुरक्षा हो, और विशाल बुद्धिकी सर्वत्र प्रशंसा हो । ' जो विशाल बुद्धिवाला हो उसकी प्रशंसा सब करें । राष्ट्रमें बुद्धिमानोंका सन्मान हो । और बुद्धिका संवर्धन होता रहे, ऐसा विद्या प्रसारका प्रबंध होना चाहिये ।

धन किसका है ?

राष्ट्रमें धनकी वृद्धि होनी चाहिये । बुद्धिके साथ धन राष्ट्रमें रहना चाहिये । बुद्धि और धनसे ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है इसलिये कहा है—

जिग्युषः धनम् ॥ १२ ॥
तरणिः जयति, क्षेति, पुष्यति । ऋ. ७।३२।९

' विजय प्राप्त करनेवालेका ही धन होता है । ' ' जो शत्रुको पार करता है वही विजय पाता है, वही यहां ठीक रीतिसे रहता है और वही हृष्टपुष्ट भी होता है ।

यह नियम इस विश्वमें कार्य कर रहा है । मनुष्य इस नियमको जाने और ऐसे बनें । विजयी बननेका अर्थ यह नहीं है कि दूसरोंपर सदा हमला करते रहना । इसकी आवश्यकता नहीं है । परंतु अपनेमें शुभ कर्म करनेकी विशेष शक्ति प्राप्त करनेका अर्थ ही विजय प्राप्त करना है ।

रक्षक कैसा हो ?

वैयक्तिक सुरक्षा और राष्ट्रकी सुरक्षा करनेके नियम समान ही होते हैं । अतः इस विषयमें कुछ वचन यहां देखने योग्य है—

सुप्रतिचक्षं दक्षाय्यं अवसे अस्ते न्यृण्वन्
ऋ. ७।१।२

' उत्तम निरीक्षण करनेवाले बलवान् वीरको घरमें संरक्षणके लिये नियुक्त करते हैं । ' (सु-प्रति-चक्षः) उत्तम रीतिसे प्रत्येक वस्तुका निरीक्षण करनेवाला, किसी तरह शिथिलतासे व्यवहार न करनेवाला तथा (दक्षाय्यः) दक्षतासे कार्य करनेवाला तथा स्वयं बलवान् ऐसा जो वीर होगा, उस वीरको अपने (अस्ते) घरमें (अवसे) संरक्षण करनेके लिये रखो । घरके रक्षणके कार्यके लिये ऐसे योग्य व्यक्तिको रखनेको यहां कहा है, पर ग्रामरक्षकों और राष्ट्ररक्षकोंमें भी ये ही गुण चाहिये । क्योंकि रक्षकोंके गुण समान ही सर्वत्र होने चाहिये । रक्षणका क्षेत्र छोटा हो या बडा हो, उससे रक्षकके गुणोंमें परिवर्तन नहीं हो सकता ।

पिप्यासः मर्ता नरः अनीकं पुरुत्रा विभेजिरे ।
ऋ. ७।१।९

' संरक्षण करनेवाले नेता लोग अपनी सेनाको अनेक स्थानोंमें विभक्त करके रखते हैं । ' अपने राष्ट्रमें जहां जितनी सेनाकी आवश्यकता हो, उतनी सेना वहां संरक्षणार्थ रख देते हैं । राष्ट्रके क्षेत्रमें इस तरह आवश्यकतानुसार सेनाके विभाग रख देते हैं और इस रीतिसे राष्ट्रका संरक्षण करते हैं ।

एकः भीमः विश्वा कृष्टीः च्यावयति। ऋ. ७।१९।१

'एक ही सामर्थ्यवान् वीर शत्रुके सब सैनिकोंको हिला-देता है।' अपने सैनिक थोडे हैं और शत्रुके अधिक हैं, इसीलिये डरना नहीं चाहिये। यदि अपने थोडेसे सैनिक उत्तम युद्धकलामें निपुण हों तो वे थोडेसे सैनिक बडी शत्रु-सेनाको भी परास्त करते हैं। इसलिये अपनी सेनाको युद्ध कलामें निपुण बनाना चाहिये। अशिक्षितोंकी बडी सेनाको युद्धनिपुणोंको छोटी सेना भी पराजित कर सकती है।

युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड्
जनुषेमषाळ्हः। व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा
अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान॥ ऋ. ७।२०।३

'(युध्म.) युद्ध करनेमें कुशल (अनर्वा) युद्धसे न भागनेवाला, (खज-कृत्) प्रखर युद्ध करनेवाला, (समद्वा) युद्धमें जानेके लिये सदा सिद्ध रहनेवाला, (शूरः) जो स्वयं शूर है तथा (जनुषा सत्राषाड्) जन्म स्वभावसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला (अ-षाळ्हः) स्वयं कभी पराभूत नहीं होता, (स्व-ओजाः) स्वयं अपनी शक्तिसे ही अत्यंत बलशाली ऐसा जो वीर है वह (पृतनाः वि आसे) शत्रु सेनाओंको अस्तव्यस्त करता है। वह (अथ विश्वं शत्रूयन्तं जघान) सब शत्रुता करनेवालोंका विनाश करता है। ऐसा वीर शत्रुके समान आचरण करनेवालोंको जीवित नहीं रखता। सब शत्रुओंका नाश करता और अपने राष्ट्रके प्रजाकी उत्तम सुरक्षा करता है।

पृतनासु पुरुं अभितस्थौ। ऋ. ७।८।४

'युद्धोंमें बडे शत्रुके साथ सामना करनेके लिये भी वह खडा रहता है।' डरता नहीं। शत्रुकी बडी सेनाका भी पराभव करता है।

विश्वेभिः अर्वाकैः सुमना भुवः। ऋ. ७।८।५

'अपने सब सैनिकोंके साथ प्रसन्न मनसे बर्तता है।' इसीसे उसकी शक्ति बढती जाती है। अपनी सेनाके प्रत्येक सैनिकको ऐसा प्रतीत होना चाहिये कि मेरे साथ सेनापति प्रसन्न है। इससे सेनाका उत्साह बढता है और सैनिक अपनी पूरी शक्ति लगाकर लडते हैं। सेनाको प्रसन्न रखने-की सूचना यहां मिलती है।

जनानां नृपातारः अवृकासः। ऋ. ७।७४।६

'लोगोंका संरक्षण करनेवाले आरक्षक (अ-वृकासः) हिंसाशील न हों।' वे क्रूर न हों।

उग्रा अयासुः युद्धेषु शवसा प्रमदन्ति।

ऋ. ७।५७।१

'लडनेवाले, आक्रमण करनेवाले शूरवीर अपने ही शक्तिसे आनंदित होते हैं।' अपने बलसे वे शत्रुपर आक्रमण करते हैं और उसीसे वे प्रसन्न होते हैं।

इमे रुक्मेभिः आयुधैः तनूभिः भ्राजन्ते।
समानं आञ्जि कं आशते। ऋ. ७।५७।२

'ये सैनिक (समानं आञ्जि) सबके सब एक जैसा गणवेश धारण करते हैं और सबके सब अपने शरीरोंपर समान अलंकारों और शस्त्रोंको धारण करनेसे सुशोभित दीखते हैं।' यह सैनिकोंका वर्णन है। सब सैनिकोंका गणवेष एक जैसा हो। इससे सैन्यका प्रभाव बढता है। ऐसी सेनाको देखते ही शत्रुपर प्रभाव विशेष पडता है, जिससे अपना विजय होनेमें सहायता होती है। अपनी सेनाका प्रभाव बढानेके लिये इस तरह प्रभावी गणवेष रखना अत्यंत आवश्यक है।

भीमासः तुविमन्यवः अयासः। ऋ. ७।५८।२

'आक्रमण करनेवाले वीर शरीरसे भयंकर दीखनेवाले हों और अत्यंत उत्साही हों।' ऐसे वीर ही शत्रुपर आक्रमण कर सकते और उनको पराभूत कर सकते हैं।

विश्वानि दुर्गा तिरः। ऋ. ७।६०।१२

'सब संकटोंसे मुक्त करके प्रजाजनोंकी सुरक्षा करो।' यहां सब कठिन प्रसंगोंसे जनता की मुक्ति करके उनको सुरक्षित करना रक्षकोंका कर्तव्य बताया है।

विश्वस्य स्थातुः जगतश्च गोपा। ऋ. ७।६०।२

'सब स्थावर जंगमका संरक्षण करनेवाला रक्षक हो।' शत्रुसे सबका संरक्षण होना चाहिये।

धृष्णोः शर्धस्य धुनिः॥ ७॥
उग्रः पृतनासु साळ्हा। ऋ. ७।५६।२३

'विजयी अथवा शत्रुपर आक्रमण करनेवाले संघका वेग प्रचण्ड होता है।' 'जो उग्र वीर है वह युद्धोंमें शत्रुके सैनिकोंका पराभव करता है।'

स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे स्वधाम्ने अषाळ्हाय
सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय गिरः भरत।

ऋ. ७।४६।१

'जिसका धनुष्य स्थिर है टूटता नहीं, जो अतिशीघ्र बाण चलाता है, जो अपनी धारणाशक्तिसे रहता है, जो

शत्रुका पराभव करता है, परंतु कभी पराभूत नहीं होता, जो तीक्ष्ण आयुधोंसे शत्रुका वेध करता है, उस वीरकी प्रशंसा करो।' इस तरहके वीर रक्षणके कार्यमें नियुक्त करने चाहिये।

सहमान और असह्य

यहां 'सहमान और असह्य' ये दो पद हैं। ये दो पद ध्यानमें रखने चाहिये। विजय प्राप्त करनेके लिये ये दो प्रकारके बल प्राप्त करने चाहिये। एक 'सहमान' होना है। इसका अर्थ यह है कि शत्रुका आक्रमण हो जानेपर स्वयं अपने स्थानपर स्थिर रहना। शत्रुके आक्रमणसे पराभूत न होना और न भाग जाना। यह अपने स्थानपर स्थिर रहनेका जो बल है उसका नाम 'सहमान' है। दूसरा बल 'असह्य' पदसे बताया है, 'अ-पाळह' भी इसीको कहते हैं। शत्रुके लिये असह्य आक्रमण करनेका यह बल है। अपना आक्रमण शत्रुपर होनेपर शत्रुको स्थान-भ्रष्ट होकर भाग जाना ही चाहिये। ऐसा जो बल है उसका नाम 'असह्य' है। ये दोनों बल व्यक्तिमें और राष्ट्रमें रहने चाहिये तब विजय मिलता है। विजय यौंही नहीं मिलता, उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये, उसके लिये सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये। यह सब इन दो शब्दोंसे यहां सूचित किया है। जो अपने वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय विजयके इच्छुक हों, वे इन सामर्थ्योंको अपनेमें बढावें।

राजाके संबंधमें

अब राजाके संबंधमें कुछ गुणोंका यहां थोडासा विचार करना चाहिये। उन गुणोंका वर्णन करनेवाले ये मन्त्र हैं-

अनुत्तमन्युः राजा। ऋ. ७।३१।१२

'राजा अप्रतिम उत्साह युक्त होना चाहिये।' निरुत्साह, निराशा, व्यग्रता उसके पास नहीं रहनी चाहिये। क्योंकि प्रजाका उत्साह बढानेवाला राजा होता है। यदि वही हतोत्साह हुआ, उदास हुआ, तो प्रजाका उत्साह कौन बढायेगा। इसलिये राजामें उत्साह अवश्य चाहिये अर्थात् राष्ट्रमें उत्साहपूर्ण वायुमण्डल रहना चाहिये। उत्साहसे शक्ति बढती है, उत्साहसे ही महान् कार्य किये जाते हैं। उत्साह ही विजय देता है।

राजा राष्ट्राणां पेशः, अनुत्तमं अस्मै क्षत्रं। ऋ. ७।३४।११

सुक्षत्रः राजा। ऋ. ७।६४।१

'राजा राष्ट्रका स्वरूप है, सौंदर्य है। अतः इसके पास उत्तम क्षात्रबल रहना चाहिये। उत्तम क्षात्रबलसे ही राजा सम्मानके योग्य होता है।' अर्थात् जिस राजाके पास उत्तम क्षात्र बल रहता है वह-राष्ट्रका वैभव बढाता है। निर्बल राजा राष्ट्रकी उन्नति नहीं कर सकता।

सुपारदक्षः राजा गंभीरशंसः। ऋ. ७।८७।६

'उत्तम रीतिसे प्रजाको कष्टोंसे पार करनेवाला राजा प्रशंसाके लिये पात्र होता है।' राजाका यह कर्तव्य ही है। 'सु-पार-दक्षः' उत्तम रीतिसे पार करनेमें दक्ष ऐसा राजा हो।

अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः राजानः महः ईशते ॥३॥

राजानः अनाप्यं क्षत्रं आशत। ऋ. ७।६६।११

'न दबते हुए उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले तेजस्वी राजा महत्त्वका स्थान प्राप्त करते हैं।' 'उत्तम राजा दुष्प्राप्य क्षात्र बलको प्राप्त करते हैं।'

'वैदिक राष्ट्र शासन' के विषयमें परिपूर्ण रीतिसे विवरण करना बडे ग्रन्थका विषय है इस छोटेसे निबंधमें हमने संक्षेपसे बताया है कि, प्रजाद्वारा नियुक्त होकर ग्रामकी ग्रामसभा, राष्ट्रकी राजसमिति, राष्ट्रका नियमन करनेवाला मन्त्रीमण्डल और उसका अध्यक्ष राष्ट्राध्यक्ष किस तरह वैदिक राष्ट्रशासनमें बनता है, सुयोग्य शासकोंके ही दुराचारसे किस तरह राक्षस बनते हैं, राष्ट्राध्यक्षके लिये कौनसे आदेश दिये जाते थे, अनियमसे चलनेवाले राजाकी क्या गति होती थी? वेदमें कितने राष्ट्रशासन कहे हैं, उनमें कौनसा शासन श्रेष्ठ है? प्रजाके आधारसे राजा किस तरह रहता है। राष्ट्र रक्षणके लिये कीलोंकी रचना, सुवर्ण और दुष्टवर्गके लोगोंके रहनेके पृथक् स्थान, कीलेके संरक्षक अधिकारी कैसे हों, संरक्षक सेनामें किनकी भरती की जाय, पुरोहितका राष्ट्ररक्षणमें कर्तव्य, राजाका कर, संरक्षण और शत्रुका सामना करना, विजय देनेवाले दो गुण, राष्ट्र रक्षणकी तैयारी, राजाके कर्तव्य इत्यादि विषयोंका यहां संक्षेपसे विचार किया है।

इस लेखमें मुख्यता 'बहुपाय्य स्वराज्य' का शासन और 'राष्ट्रका संरक्षण' इन दो विभागोंका ही विचार किया है। राज्यशासनके अन्यान्य विषयोंका विचार अन्य निबंधोंमें स्वतंत्र रूपसे किया जायगा। और ये सब निबंध मिलकर राज्य शासन विषयक वेदके आदेशोंकी कल्पना दे सकेंगे।

प्र श्न

१ राष्ट्रकी कल्पना ऋषियोंने उत्पन्न की इस विषयका वेद मंत्र देकर उसका अर्थ करो।

२ वैराज्य, शासन ग्रामसभा, राष्ट्रसमिति मंत्रीमण्डल ये कैसे बनते हैं और इनके कार्य क्या हैं ?

३ अध्यक्ष, राजा, अनियंत्रित राजा, कैसे होते हैं ?

४ रक्षकोंके राक्षस किस तरह होते हैं ?

५ राज्याभिषेकके समय राजाको कौनसे आदेश देते थे ?

६ राष्ट्रहितकी प्रतिज्ञा कौनसी है ?

७ बुरे राजाको हटाकर अच्छे राजाको किस तरह राज्यपर बिठलाते थे ?

८ भोज्य, साम्राज्य, महाराज्य, आधिपत्यमय राज्य, सामन्तपर्यायी राज्य, जानराज्य, स्वराज्य इन शासनोंके लक्षण बताइये।

९ सब पृथिवीपर एक ही राजा हो यह घोषणा किसने और किस समय की ?

१० राजाका आधार कौनसा है ?

११ राष्ट्रके साथ बढनेका उपदेश देनेवाला मंत्र कौनसा है ?

१२ कीलोंसे रक्षण करनेके आदेश देनेवाले मंत्र बताओ।

१३ सुवर्ग और दुर्वर्गके लोकोंका पृथक् स्थान नगरमें करनेसे कौनसे लाभ हैं ? और हानि क्या है ?

१४ कीलोंके अधिपति कैसे हों ?

१५ सेनामें किन लोगोंकी भरती की जाय ?

१६ पुरोहितके कर्तव्य क्या हैं ?

१७ राजाको देनेका कर राजा कैसा वसूल करे ?

१८ शूरके लक्षण बताओ।

१९ शत्रुके साथ सामना करनेका स्वरूप बताओ।

२० राष्ट्रशासनमें जनताका कल्याण ही एकमात्र हेतु है, इसके वचन देकर उनका स्पष्टीकरण करो।

२१ उत्तम राजाके गुणोंका वर्णन करो।